International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(1): 85-87

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(1): 85-87
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 20-11-2016
Accepted: 21-12-2016

मीनाक्षी
शोधच्छात्रा संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

Correspondence
मीनाक्षी
शोधच्छात्रा संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

ऋग्वैदिक ऋत एवं अवेस्तीय अशः एक तुलनात्मक अध्ययन

मीनाक्षी

सार
आधुनिक विज्ञान की सभी गवेषणाओं का लक्ष्य सृष्टि के तत्त्वों के मूल तक पहुँचना है। वेद के अनुसार सृष्टि का मूल सूत्र ही ऋत और सत्य है जो सब ओर समिद्ध तप या उष्णता से उत्पन्न होते हैं उन्हीं से व्यक्त संसार से पहले अव्यक्त प्रकृतिरूप रात्रि उत्पन्न होती है और गतिशील सूक्ष्म कणों के रूप में व्यापक जल बनता है प्रस्तुत शोधपत्र प्रारम्भिक वैदिक युग में सृष्टि के मूलतत्त्व के रूप में विद्यमान ऋत विषयक धारणा के सम्बन्ध में विचार प्रस्तुत करता है। पूववैदिक सम्बन्धी यह ऋत विचार ही कालान्तर में सत्य का पर्याय माना जाने लगा। इसी अन्तराल में जरथुश्त्र धर्म जो कि पूर्ण रूप से नैतिकनियमों, पवित्रता, शुचिता, सदाचार पर आश्रित है, में ऋत विषयक धारणा अश के रूप में विकसित हुई।

कूट शब्दः शाश्वत नियम, नैतिक आचरण, सत्य, ऋत, अहुरमज़्दा, अश, गाथा, आत्मिक शुद्धि, सदाचार

प्रस्तावना
प्रसिद्ध दार्शनिक ह्वाइटहैड के अनुसार प्रत्येक युग के चिन्तन की विभिन्न दिशाओं में एक सामान्य विचार योजना अन्तर्निहित होती है और यह सृष्टिविद्या के रूप में अभिव्यक्त होती है।[1] मनुष्य का आत्मानुभव और विश्वानुभव एक साथ जुड़े रहते हैं। प्रत्येक युग का विज्ञान इस मूलतत्त्व का ज्ञान होता है जिससे सृष्टि होती है, प्रारम्भिक वैदिक युग में सृष्टिविद्या के सूत्र प्रधान थे, पूर्ववैदिक युग में ऋत ही सृष्टि का मूल नियामक तत्त्व था, देवता ऋत–सूत्र से जुड़ी चित्त शक्तियाँ थी। परवर्ती वैदिक युग में देवताओं का स्थान ब्रह्म ने, ऋत का धर्म ने लिया। ऋत का सिद्धात सर्वप्रथम ऋग्वेद में प्राप्त होता है अवान्तर कालीन पौरस्त्य एवं पाश्चात्य टीकाकारों ने इसका पृथक्–पृथक् अर्थ ग्रहण किया है। निरुक्तकार यास्क ने ऋत का अर्थ उदक, सत्य एवं यज्ञ[2] सायण ने ऋत को कर्मफल, स्तोत्र एवं गति[3] अर्थ का वाचक स्वीकार किया है। पाश्चात्य भाष्यकार ग्रिफिथ के अनुसार 'ऋत' विश्व की व्यवस्था एवं निर्देश करने वाला तत्व है, ऋग्वेद के भाष्य में ऋत को उन्होंने शाश्वत विधान या पवित्र नियम माना है। रॉथ के अनुसार ऋत एक प्राकृतिक नियम है। उन्होंने यज्ञ–सम्बन्धी नियम तथा मानव–जीवन के व्रत आदि को भी "ऋत" का अभिधायक बताया है।[4] मोनियर विलियम्स ने ऋत को अनेकार्थक बताया है उनके अनुसार 'ऋत' यज्ञ सम्बन्धी नियम, दैवी नियम तथा दैवी सत्य है।[5]
अरविन्द ने 'ऋत' को सदाचार का मापदण्ड माना है। उनका कथन है कि सब वस्तुओं का सारभूत पदार्थ ऋत है। भौतिक से आध्यात्मिक रूप में परिवर्तन का कारण कारण 'ऋत' ही है।[6] स्वामी दयानन्द ने निरुक्त के अनुसार ही 'ऋत' की व्याख्या की है– सत्य सब विद्याओं से युक्त चारों वेद या जगत् का सनातन कारण।[7]
ग्रासमन ने ऋत के अर्थ "पवित्र–कार्य, दैवी–नियम या विधान, शाश्वत सत्य, अपरिवर्तनीय क्रम या नियम, यज्ञ आदि दिये है।[8] घाटे के अनुसार विकास की अन्तिम दशा में 'ऋत' वह नैतिक विधान है जिसका पालन प्रत्येक सदाचारी के लिए आवश्यक है।[9]
अधिकांश पाश्चात्य विद्वानों ने इसे सर्ग–सिद्धान्त का वाचक माना है।[10] यद्यपि कालान्तर में ऋत को सत्य का पर्याय माना जाने लगा परन्तु ऋग्वेद में एक स्थान पर ऋत और सत्य के साथ–साथ आने से यह स्पष्ट होता है कि ये दोनों परस्पर सम्बद्ध होते हुए भी भिन्न तत्त्व है।[11] वेद में ऋत के तीन रूप है– (1) प्रकृति का अपरिवर्त्य नियम (2) देवताओं का ठीक तथा उपयुक्त प्रकार से उपासना (3) मनुष्य का नैतिक आचरण। इन तीनों धारणाओं का विकास ऋग्वेद से आरम्भ होता है।
इनमें से पहली धारणा यह थी कि प्रकृति में सर्वत्र एक शाश्वत नियम व्याप्त है और उसका प्रत्येक कार्य एक क्रम एवं नियम के अनुसार होता है।

दिन के पश्चात् दिन, मास के पश्चात् मास, ऋतुओं के पश्चात् ऋतुएँ और वर्ष के पश्चात् वर्ष उसी क्रम से प्रत्येक बार आते जाते हैं। सूर्य निश्चित समय पर निश्चित स्थान में उदित होता है और निश्चित समय एवं स्थान पर अस्त हो जाता है तारे एवं नक्षत्र भी आकाश में अपने निश्चित स्थान पर उदित होते हैं और निश्चित गति से अपना मार्ग पूर्ण करते हैं इस नियम का रक्षक एक सर्वशक्तिमान् देवता है जो प्रकृति की सब वस्तुओं पर नियन्त्रण करता है।[12] यही प्रथम धारणा ऋग्वेद में ऋत की धारणा के रूप में विकसित हुई है, जिसे आद्य शक्ति के रूप में देखा गया है। ऋग्वेद के अनुसार प्रत्येक पदार्थ और उसकी गति में मूल तत्त्व के रूप में ऋत विद्यमान है। विस्तार के कारण बहुत रूपों वाले पृथ्वी और अन्तरिक्ष को पृथ्वी बताकर उन्हें गम्भीर कहा गया है, क्योंकि उनमें विद्यमान प्रत्येक तत्व का अभी तक पूर्ण ज्ञान नहीं हो सका है। ये दोनों ही परम गौएं कहीं जाती है जो ऋत अर्थात् शाश्वत तत्त्व के लिए दोहन करती है अर्थात् असंख्य पदार्थों को उत्पन्न करती रहती है।[13] नदियाँ ऋत से बहती हैं। सूर्य ने सत्य को फैलाया।[14] ऋत बड़े योद्धाओं को भी अभिभूत करता है।[15] ऋत से चलती हुई सरमा ने गायों को पाया।[16] इन उदाहरणों में ऋत औचित्य, सत्य, सही मार्ग का वाचक है। ऋत और सत्य को सृष्टि के आरम्भ में बताया गया है जिसके बाद क्रमशः दिन–रात, सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, आदि का प्रादुर्भाव हुआ है।[17]

यहाँ ऋत को सत्य से जुड़ा बताया गया है और दोनों को सर्जनात्मक तप से उत्पन्न। सृष्टि के पहले स्रष्टा के ध्यान में उसका नियामक मूलरूप ही ऋत है और सृष्ट पदार्थों के आदर्श के रूप में वही सत्य है। ऋत का लोक इस लोक के अतीत है और इसलिए परमव्योम के नाम से अभिहित है। मित्र और वरुण परमव्योम में ऋत के रक्षक हैं, वे सत्यधर्मा हैं।[18] मित्र और वरुण धर्म से, असुर की अर्थात् दिव्य माया से ऋत के रक्षक हैं, वे ऋत से विश्व भुवन पर शासन करते हैं।[19] इस प्रकार परम व्योम में अवस्थित, देश–कालातीत ऋत सृष्टि का मूल तत्त्व और नियामक है, उसका प्रतिदर्श और आदर्श है। व्यक्त जगत् में नाना पदार्थ और घटनाएँ जिस एक अदृश्य महासूत्र से व्यवस्थित हैं, वही ऋत है। विश्व के प्रतिमानभूत ऋत की अनुरूपता ही विषयों को सत्यता प्रदान करती है। उसकी अनुसारिता ही क्रिया या गति को सही, ठीक या उचित बनाती है।

ऋत की दूसरी धारणा देवताओं से सम्बन्धित है, ऋग्वेद के अनुसार ऋत से ही देवता अपनी परिधि में रहते हैं। स्वयं देवताओं का भी जन्म ऋत के आधार पर हुआ है। उन्हें प्रायः 'ऋत–जात' कहा गया है। वे ऋत को जानते हैं (ऋतज्ञ), उसका पालन करते हैं (ऋतयु) और उससे प्रेम करते हैं (ऋतसप्)। बृहस्पति (बृहतां पाता वा पालयिता) भी ऋतप्रजात (ऋ. 2.23.15) है क्योंकि उससे ही ऋत, शाश्वत नियम का जन्म होता है। अग्नि को भी ऋत प्रजात कहा गया है क्योंकि वह ऋत का वाहक है (ऋ. 1.65.5) उसके मूल में शाश्वत नियम निरन्तर रहता है, जल से सम्बद्ध विद्युत रूप अग्नि में भी वही शाश्वत तत्व विद्यमान रहता है। ऋ. 10.67.1 में भी बुद्धि को ऋतप्रजाता कहा गया है, क्योंकि वही उत्तम स्थिति में ऋत को उत्पन्न करती है। उत्कृष्ट रूप में बुद्धि, अध्यात्म अथवा विज्ञान के माध्यम से ऋत का ही अन्वेषण करती है। इसी क्रम में उषा को भी ऋतपा और ऋतेजा कहा गया है, क्योंकि वह शाश्वत नियम का पालन करती हुई चलती है।[20] उषाओं को ऋत से युक्त घोड़ों अर्थात् किरणों के द्वारा सब लोकों पर फैल जाने वाली कहा गया है[21], किरणों की यह गति ही ऋत है– यह ऐसा ऋत है जिससे विज्ञान ज्योतिः पिण्डों की दूरी मापता है। अनेक वेदमन्त्रों में उषा/उषाओ के प्रसंग में 'ऋतावरी'[22] विशेषण का प्रयोग हुआ है जिससे स्पष्ट है कि उषा ऋत अथवा शाश्वत नियम अथवा सत्य को करने वाली है और उससे ही प्रकाशित होने वाली या उसको अपने व्यवहार से प्रकाशित करने वाली है। यह ऋत अथवा सत्य उषा के मूल रूप सूर्य से ही अनुप्रेरित है। मरुत् ऋतसाप है अर्थात् ऋत से संयुक्त हैं। इस ऋत के द्वारा ही वे सत्य को प्राप्त होती है। मेघ, वर्षा, विद्युत्, आदि के माध्यम से उनका सत्य स्वरूप प्रकट होता है।[23] इसी प्रकार सूर्य और पवन अथवा रस और ज्योतिरूप अश्विनौ भी ऋत अथवा शाश्वत नियम से बढ़ने वाले बताये गये हैं।[24] वेद की नैतिक मान्यताओं का मूल आधार भी ऋत और सत्य का व्यापक सिद्धान्त है। ऋग्वेद में अनेक बार ऋत और सत्य का साथ–साथ प्रयोग हुआ है।[25] प्राकृतिक गतिशीलता में विद्यमान नियमबद्धता ऋत है, सत्य का स्थान ऋत से ऊँचा है, सत्य से ही पृथ्वी टिकी हुई है।[26] ऋत सत्य तक पहुँचने का मार्ग है। जीवन में जब नियमबद्धता होगी तभी मनुष्य अन्ततोगत्वा सत्य तक पहुँच पाएगा, नैतिक पथ से चलकर ही सत्य तक पहुँचा जा सकता है।

इसी प्रकार ऋतम्भरा संस्कृति के संपोषक वैदिक ऋषि जीवन में कल्याणकारी इच्छा शक्ति के उदय की कामना करते हैं।[27] जब व्यक्ति में शुभ संकल्प होगा तब वह ऋत की ओर उन्मुख होगा।

ऋग्वेद के एक मन्त्र से स्पष्ट होता है कि वचन और कर्म उभयतः ही ऋत एवं सत्य के पालन की प्रतिज्ञा की जाती थी,[28] क्योंकि वे जानते थे कि ऋत के मार्ग पर चलने वाले के लिए प्राकृतिक शक्तियाँ भी सुख उपलब्ध कराने में सहायक होती है[29] ऋत केवल इहलोक में भी विभिन्न उपलब्धियों का साधन नहीं है अपितु परलोक में भी सुगति प्राप्त कराता है[30] इसीलिए वैदिक ऋषि पुनः पुनः अपने–अपने आराध्य से ऋत के द्वारा दुराचरणों से निवृत्ति की तथा नियमोल्लघंना को क्षमा करने की, दया करने की प्रार्थना करते हैं– "हे मित्रावरुणौ, जैसे नौका द्वारा नदी पार की जाती है, उसी प्रकार आपके ऋत के पंथ के द्वारा हम दुराचरणों से पार हो जाएं।[31]

उपर्युक्त उद्धरणों से वैदिक काल में ऋत का महत्व भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है। अतः ऋग्वेद में ऋत एक अद्भुत शब्द है जो स्वयं में अनेक गम्भीर, गूढ तथा महत्वपूर्ण अर्थों को निहित किये हुआ है एक ओर ऋत अपने में अलौकिकता एवं दार्शनिक गम्भीरता संजोए हुए है दूसरी ओर यह सत्यनिष्ठ नैतिकतापरायण और अनुशासनबद्ध समाज का उज्जवल उदाहरण है।

अवेस्ता में अश

ऋग्वैदिक ऋत विषयक धारणा अवेस्ता में अश के रूप में प्राप्त होती है, अवेस्ता में ऋत का ईरानी रूप अश सृष्टि के शाश्वत नियम एवं मनुष्य के नैतिक आचरण से संबंधित है बार्थोलोमे अश शब्द की व्युत्पत्ति अर्त से स्वीकारते हैं प्राचीन फारसी में अरत पहलवी में यह अरत, अशा[32] प्राप्त होता है।

अहुर ईरानी देवमण्डल का अधिपति है। मज़्दा (बुद्धिमान संस्कृत–मेधा) शब्द अधिकतर विशेषण के रूप में प्रायः इस शब्द के साथ प्राप्त होता है। ऋग्वैदिक साहित्य एवं अवेस्ता में पाप की भावना, पाप की क्षमा–याचना तथा नैतिक ऋत की भावना समान रूप से देखी जाती है, इन नैतिक नियमों के अधिष्ठाता ऋग्वैदिक साहित्य में वरुण देवता कहे गए हैं जिनके लिए असुर संज्ञा का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है, कालान्तर में यह असुर पद 'राक्षस' वाची हो गया एवं वैदिक साहित्य में इन्द्र देव का प्राधान्य हो गया, किन्तु अवेस्ता साहित्य में अहुरमज़्दा के रूप में वरुण देव की उपासना स्वीकृत की गयी एवं प्राचीन वैदिक ऋत को 'अर्त' या 'अश' नाम से सृष्टि के मूलतत्त्व के रूप में यहाँ महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। जागतिक नियमों को बनाने वाले अहुरमज़्दा को अश का उत्पत्ति स्थान कहा गया है जिस प्रकार ऋग्वेद में वरुण को 'खा ऋतस्य'[33] (ऋत का स्रोत) कहा गया है उसी प्रकार अवेस्ता में उसे 'अशाहे खाओ'[34] कहा गया है। अहुरमज़्दा को अश को जनक[35] कहा गया है जिसकी उत्पत्ति अहुरमज़्दा ने बुद्धि[36] से की है। अश अहुरमज़्दा का प्रमुख सहायक है[37] जिसके द्वारा वह संसार के सभी कार्यों को नियन्त्रित करता है मन्त्रों में उनका आह्वान प्रायः एक साथ किया गया है,[38] दोनों का निवास स्थान एक ही है।[39]

वहिश्त[40] (संस्कृत वशिष्ठ) विशेषण प्रायः अश के लिए प्रयुक्त हुआ है जिसका अर्थ है श्रेष्ठ। अवेस्ता में वैदिक मन्त्रों की भाँति कुछ

मन्त्र प्रश्नोत्तर शैली में प्राप्त होते हैं– गाथा में जरथुस्त्र अहुरमज़्दा से प्रश्न करते हैं कि 'अश का जनक कौन है', 'धरती और आकाश को किसने धारण किया है'[41]– इस संबंध में अहुरमज़्दा कहते हैं कि दिन–रात, ऋतु–परिवर्तन, वायु–वर्षा, वनस्पति आदि सभी कार्य अश से नियमित है।[42] कर्मकाण्डों एवं अनुष्ठानों में भी अहुरमज़्दा के साथ अश को भी आहुतियों दी जाती है[43] गाथाओं में जरथुस्त्र ने स्वयं को जओतृ अर्थात् यज्ञों का पुरोहित कहा है और अश के नियमों का ज्ञाता[44] एवं अशवान् कहा गया है।

इसी प्रकार मनुष्य का व्यवहार भी अश से नियमित है, सत्यनिष्ठा, आस्था, साहस, सात्विकता, न्यायशीलता दिव्य–ज्योति सभी अश के लक्षण है। जरथुस्त्र धर्म में नीति, धर्म, व्यवहारपक्ष का प्राधान्य है एवं मनुष्य के लिए इहलोक में पुण्यकर्मों का उपार्जन आवश्यक बताया गया है पवित्रता 'शुचिता' का बहुत महत्त्व प्रतिपादित किया गया है आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार की पवित्रता ही मनुष्य के लिए आवश्यक कही गयी है।

आचार–पालन की सार्थकता, दया, सत्य, आत्मिक शुद्धि पवित्रता में बतायी गयी है। यहाँ श्रेष्ठ आचारों के परिपालन पर विशेष बल दिया गया है। उनकी समस्त नीति तीन भागों में विभाजित है जिनमें उत्तम विचार, उत्तम वचन, उत्तम कार्य का विशेष महत्त्व है। सुकृत या शुभकार्य अथवा सदाचार अश के लक्षण है। अश के अनुसार आचरण करने वालों को अशवान् कहा गया है[45] तथा द्रुग (संस्कृत द्रोह) के अनुसार आचरण करने वालों को द्रुगवंत कहा गया है।[46] इसलिए गाथा में वर्णन है कि मनुष्य अश के अनुसार आचरण करता रहे तो सृष्टि का यह चक्र नित्य तथा शाश्वत बना रहता है एवं अश के पथ पर चलकर ही मनुष्य परलोक को प्राप्त कर सकता है।[47]

अवेस्ता की द्वितीय गाथा में मनुष्य के आत्मिकबल तथा सदाचार में बढ़ने के लिए, इहलोक में ही सत्य धर्माचरण के द्वारा सर्वश्रेष्ठ को प्राप्त करने के लिए जरथुस्त्र द्वारा अश का स्तुतिगान किया है। इनमें एक पवित्र मन्त्र जिसे प्रायः आत्मशुद्धीकरण हेतु 'आचमन मन्त्र' भी कहा गया है में उपरोक्त भावों का वर्णन निम्न गाथा–मंत्र में किया गया है।

अषम वाहू वहिश्तॅम् अस्ती
अश्ता अस्ती।। उश्ता अह्माइ।
ह्यत् अषाइ, वहिश्ताइ अषम्।[48]

उपसंहार

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर स्पष्टतया ऋग्वैदिक ऋत एवं अवेस्तीय अश में पर्याप्त साम्य दृष्टिगोचित होता है। दोनों में ऋत या अश प्रकृति के शाश्वत नियम एवं मनुष्य के नैतिक आचरण से सम्बन्धित है दोनों में सदाचरण के मार्ग पर चलने वाले को अशवान् या ऋतवान् कहा गया है। दोनों में ऋत एवं अश को इहलोक एवं परलोक प्राप्ति का मार्ग बताया गया है। दोनों का सम्बन्ध वरुण या अहुरमज़्दा से है। इस प्रकार यद्यपि ऋग्वैदिक ऋत का स्वरूप जितना विस्तृत रूप से ऋग्वेद में वर्णित है उतना विस्तृत वर्णन अवेस्ता में अश का नहीं है तथापि इन दोनों में अनेक समानताएँ विद्यमान है जो इन दोनों के एक होने का समर्थन करती है।

संदर्भ

1. ह्वाइटहैड, एडवेंचर ऑव आइडियाज, पृ० 14
2. ऋतमित्युदकनाम–निरुकत 2/25, सत्यं वा यज्ञं वा निरुक्त 4/19
3. ऋत शब्द पर सायण भाष्य – ऋ० 1/1/8, 10/65/3, 10/5/7
4. एनॉल्स आफ भण्डारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट–वाल्यूम 35, पृ. 27
5. संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, पृ० 223
6. सीक्रेट आफ वेदाज़ – अरविंद, पृ०102; वेद रहस्य अरविंद पृ० 107
7. ऋ० 1/1/8 पर दयानन्द–भाष्य
8. वोर्तरबुख त्सुम ऋग्वेद–ग्रासमान
9. लैक्चर्स आन ऋग्वेद–घाटे पृ० 144
10. वैदिक देवशास्त्र– डॉ० सूर्यकान्त पृ० 18
11. ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्, ऋते सत्यं प्रतिष्ठितम्।
12. लेक्चर्स आन दि ओरिजन एण्ड ग्रोथ आफ रिलीजन, पृ० 249
13. ऋताय पृथ्वी बहुले गम्भीरे ऋताय धेनू परमे दुहाते। ऋ. 4.23. 10
14. ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो..... ऋ. 1.105.12
15. ऋतं सासाह महिचित् पृतन्यतः। ऋ० 8.86.5
16. ऋतं यती सरमा गा अविन्दत्। ऋ० 4.43.7
17. ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत। ऋ० 10.190.1–3
18. ऋतस्य गोपावधिष्ठतो रथं सत्यधर्माणा परमे व्योमनि। ऋ० 5. 63.1
19. धर्मणा मित्रवरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य माययां। ऋ० 5.63.7
20. ऋ० 1.1/3.12
21. यूयं हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वैः परिप्रयाथ भुवनानि सघः। ऋ० 4.51. 5
22. ऋतावरी– ऋ० 6.6.1.9, ऋतावरि – ऋ० 2.1.1, ऋतावरीम्– ऋ० 5.80.1, ऋतावरीः – ऋ० 3.56.5
23. ऋतेन सत्यमृतसाप आयन् शुचिजन्मानः शुचयः पावकाः। ऋ. 7. 56.12
24. ऋतावृधा – ऋ 1.47.1 तु– अश्विनौ यद्व्यश्नुवाते सर्वं रसेनान्यो ज्योतिषान्यः। निरुक्त 12.1
25. ऋ० 10/62/3, 1/90/6, 4/23/8
26. ऋ० 10/190/1, 7/56/1, 7/56/12, 7/49/3
27. संत्येनोत्तम्भिता भूमिः। ऋ० 1/85/1
28. ऋ० 1/113/4
29. ऋ० 1/90/6
30. ऋ० 10/54/4
31. ऋ० 7/65/3
32. History of Zoroastrianism Pg. 47
33. ऋ० 2/28/5
34. यस्न 10/4
35. यस्न 44/3; 47/2
36. यस्न 31/7, 8
37. यस्न 46/7
38. यस्न 28/8
39. यस्न 44/9
40. यस्न 28/8
41. यस्न 44/3, 4, 5
42. यस्न 50/10
43. यस्न 34/3
44. यस्न 33/6
45. Nariman Buddhist Parallels to humata, hukhta in Dastur hohshang memorial volume p. 311.316
46. यस्न 71/13
47. यस्न 72/11
48. यस्न 28/12